पेरिस
सितम्बर २६, २००६

सन्देश संख्या १०५

मनुष्य में विभेदकारी प्रक्रिया की विचित्र गतिविधियाँ

''लाहिड़ी महाशय का रहस्यवादी मार्ग'' नामक पुस्तक को किसी ने इण्टरनेट से डाउनलोड किया । उस पुस्तक को पढ़कर घोर आश्चर्य हुआ । सत्य की कोई दिशा नहीं और इसीलिए उसका कोई मार्ग भी नहीं है । यह तो प्रत्यक्षबोध की क्रिया है न कि अध्यात्म के नाम पर रहस्यवाद तथा काल्पनिक कथाओं के माध्यम से उत्तेजना फैलाने की गतिविधि । अस्तित्व से अलग कुछ बनने के लिए गतिविधियाँ की जाती हैं और इस तरह कुछ बनना सत्य से दूर कर देता है । सत्य धूर्त अहंकार द्वारा बनाया गया जटिल एवं विस्तृत 'तकनीक' नहीं है । सत्य परम्परा भी नहीं है । इसे हस्तांतरित नहीं किया जा सकता । परम पवित्रता के उदय के लिए जब–जब विभेदकारी ''मैं'' का समर्पण होता है तब–तब प्रत्येक अवसर पर स्वतंत्र रूप से सत्य का स्पर्श होता है । सत्य पर प्राधिकार के दावा का अर्थ ही है कि उसमें प्रामाणिकता का अभाव है । उदाहरणों एवं किस्सा–कहानियों का इसमें कोई स्थान नहीं होता । यह विभाजन अर्थात् ''मैं'' की पूर्ण समाप्ति है । ''मैं'' से यह मुक्ति, बोध की दैनिक क्रिया है, जो कोई अनुभव, विचार या छवि नहीं है और न ही विभेदकारी चित्तवृत्ति की समस्त मूर्खतापूर्ण गतिविधियों के पीछे छिपा ''मैं'' का कोई प्रतिबिम्ब है ।

सजगता जब पूर्ण होती है तब अनुभव बिल्कुल नहीं होता । अनुभवों की संरचना, दूसरों से ली गई जानकारियों के संग्रह का ढाँचा, विश्वासपद्धतियों एवं मगज–धुलाई के प्रभावों का जाल, आडम्बर–विरोधाभास–विकृति–विभ्रांति का मंच, विभाजन–वंचना–भ्रांति–दुविधा–द्वैत के आयाम, अवधारणा–निष्कष–अहंभाव–अनुरूपता का निर्माण; ये सभी अनुबन्धित प्रतिबिम्बों के रूप में अनुभवों को कई गुणा बढ़ाकर उत्पन्न करते हैं और बदले में, ये अनुभव उस संरचना को शक्ति प्रदान करते हैं, उस ढाँचे को दृढ़ करते हैं, उस जाल को पोषण प्रदान करते हैं, उस मंच को मजबूती प्रदान करते हैं, उन आयामों को विस्तार देते हैं तथा उस निर्माण को परिपुष्ट करते हैं ताकि सभी प्रकार के मानसिक अवशेषों एवं अवसादों का संचय हो सके और मिथ्या ''मैं'' को निरन्तरता और स्थायित्व प्रदान किया जा सके । यथार्थता अनुभव नहीं है। यदि अनुभव होता है तब वह क्षुद्र ''मैं'' का ही पुनर्निमाण, पुनर्रचना एवं सुदृढ़ीकरण है जो पुनः प्रतिक्रिया और द्वेष को जन्म देता है । वास्तविकता शाश्वत अस्तित्व है । ईश्वर वास्तविकता नहीं है । यह तो विभेदकारी चित्तवृत्ति का चरम लोभ और कूड़ा–कचरा है । इस विभेदकारी चित्तवृत्ति को ही तुम 'मन', 'मैं', 'व्यक्ति–विशेष', 'व्यक्तित्व', 'संकल्प', 'आत्मा' ('उद्धारक' के लिए प्रतीक्षारत), ''महत्वाकांक्षा', 'आकांक्षा', 'आशा', 'शिष्य का निर्धारण' ('गुरु' के लिए प्रतीक्षारत) इत्यादि कहते हो । वास्तविकता–सत्य–जो है–अस्तित्व–नित्यता–जीवन ही एक मात्र ईश्वर है । दूसरा कोई ईश्वर नहीं । ईश्वर स्वर्ग कम्पनी का कोई अध्यक्ष या प्रबन्ध निदेशक नहीं है जो यहूदी पूजा घरों, गिरजाघरों, मस्जिदों, मठों, मन्दिरों आदि के माध्यम से तथाकथित पवित्र धार्मिक ग्रन्थों का ओछा प्रदर्शन करता है । 'जो है' का ज्यों ही अनुभव किया जाता है, वह तब 'जो है' नहीं रह जाता । बल्कि 'जो होना चाहिए' की केवल आकांक्षा होती है। श्रवण की तन्मात्रा (बोध) के रूप में जीवन, एक कुत्ते के भौंकने तथा बीथोवेन के संगीत में कोई भेद नहीं करता । यह तो केवल सांस्कृतिक विशिष्टता का दंभ है जो किसी विशेष संगीत के प्रति गर्व का अनुभव करता है । आध्यात्मिक सन्दर्भों में व्यक्तिगत अनुभवों को महत्व देना उस परम अस्तित्व को अपवित्र करना है । एक 'बौद्धिक' व्यभिचारी को इतने पतित और व्यापक तरीके से स्वयं को क्रियायोग का शिक्षक घोषित कर क्रियायोग की शिक्षा बाँटते हुए, विशिष्ट दिनचर्या के अनुपालन की अनुशंसा करते हुए और इस तरह क्रियायोग के नाम पर उत्तेजना फैलाते हुए शायद क्रिया–समुदाय ने न तो पहले कभी देखा है और न ही कभी देखेगा ।

शून्यता का अनुभव शून्यता नहीं है । यह अनुभव तो अहंकार की अशिता और हिंसा है । स्थिर श्वास का अनुभवकर्त्ता भी बनने की विभेदकारी प्रक्रिया की उत्तेजना है । स्वास्थ्य का अनुभव करने वाला व्यक्ति अस्वस्थ होता है क्योंकि स्वास्थ्य अस्तित्व है और केवल बीमारी का अनुभव किया जाता है । शान्ति का अनुभवकर्त्ता शान्त नहीं है । नित्यता और उसके विस्मय को अनुभव करने वाला व्यक्ति मन एवं अहंकार में फँसा हुआ है । स्थिरत्व जड़त्व नहीं है । स्थिर बनाया गया मन स्थिर मन नहीं होता । जीवन कुछ भी नहीं चाहता । द्रष्टाविहीन दर्शन ही जीवन है । यह कोई जिज्ञासा भी नहीं रखता । यह किसी प्रकार की उत्तेजना या ऊब (बोरियत) के लिए उपलब्ध नहीं होता । यह कल्पना नहीं करता और न ही इसके पास कोई विचार, मत, मोह या अनिश्चयता होती है । किसी 'आध्यात्मिक' अभ्यास के दौरान प्राप्त तथाकथित 'आनन्द' एवं 'परमानन्द के अनुभव का महत्व नशे के बाजार में लगाये गए चिलम की फूँक के धुँए के बराबर भी नहीं । क्रिया–तकनीक के विशेषज्ञों और उनके विचारों से सावधान ।

यह शरीर (जीवन) किसी प्रकार का लोभ, भय, निर्भरता तथा इनके साथ–साथ उत्पन्न होने वाली भावुकता, द्वन्द्व,कुंठा या निराशा आदि प्रदूषणों में रूचि नहीं रखता । यह स्वाभाविक रूप से इन सभी को बाहर फेंक देता है। किन्तु जीवन से वियोग की स्थिति में शरीरी चित्तवृत्ति द्वैत निर्माण की प्रक्रिया द्वारा अपने इन अवयवों को हर हालत में सँभाल कर रखता है । कर्त्ताभाव रहित होकर अपनी क्षमतानुसार क्रिया करने से, जीवन (शरीर) को एक सहारा प्राप्त होता है जिससे प्रदूषणों के बाहर फेंकने की उसकी प्रक्रिया त्वरित गति से होती है । चित्तवृत्ति की गाँठों को खोलकर समझदारी की ऊर्जा में प्रवेश किसी मानसिक प्रयत्न या उसके नियमित अभ्यास से संभव नहीं है ।

।। ''शून्येर साथे कोलाकुली'' की जय ।।